अरविन्द कुमार

जन्म तिथि- 16 जुलाई 1956

पेशे से चिकित्सा भौतिकीविद एवं विकिरण सुरक्षा विशेषज्ञ। पूरा नाम तो वैसे अरविन्द कुमार तिवारी है, पर लेखन में अरविन्द कुमार के नाम से ही सक्रिय। आठवें दशक के उत्तरार्ध से अनियमित रूप से कविता, कहानी, नाटक, समीक्षा और अखबारों में स्तंभ लेखन। लगभग तीस कहानियाँ, पचास के करीब कवितायें और तीन नाटक बिभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित और र्चित। सात कहानियों के एक संग्रह "रात के ख़िलाफ" और एक नुक्कड़ नाटक "बोल री मछली कितना पानी" के प्रकाशन से सहित्यिक-सांस्कृतिक जगत में एक विशिष्ट पहचान बनी। आजकल विभिन्न अख़बारों और वेब पत्रिकाओं में नियमित रूप से व्यंग्य लेखन। अब तक करीब सौ से ऊपर व्यंग्य रचनायें प्रकाशित हो चुकी हैं। अभी हाल में ही इनका एक कविता संग्रह “आओ कोई ख्वाब बुनें” और एक व्यंग्य संग्रह “राजनीतिक किराना स्टोर” प्रकाशित हुआ है।

संपर्क---P-1, ला० ला0 रा0 स्मा0 मेडिकल कॉलेज, मेरठ---250004

ई-मेल: tkarvind@yahoo.com

मौसम

पहाड़ों का मौसम भी बड़ा अजीब होता है। ठीक ज़िंदगी की तरह। अभी धूप, अभी बादल और अभी बरसात। कुछ देर पहले तक आप पसीने से तर बतर हो रहे होंगे, पर अचानक ही तेज़ बर्फीली हवाएं चलने लगेंगी। और आप ठिठुरने कांपने लगेंगे। शाम को आप देखेंगे कि मौसम एकदम खुला और साफ़ है, पर सुबह चरों तरफ सफ़ेद-सफ़ेद बर्फ के फाहे गिरते हुए नज़र आयेंगे।

हमने भी जब सफ़र शुरू किया था तो आसमान बिलकुल साफ और चमकती धूप से लबरेज़ था, पर देखते ही देखते मौसम ने करवट ले ली। आसमान का रंग बदल गया। और हवा के तेज़ झोंको के साथ पानी गिरने लगा। ड्राईवर बहुत एक्सपर्ट था। वैसे भी पहाड़ी सर्पीले और अंधे मोड़ों से भरे रास्तों के ड्राईवर प्रायः एक्सपर्ट ही होते हैं। काफी देर तक तो वह तूफानी हवाओं और घनी बौछारों को चीरता रहा। पर जब मौसम जिद्द में आकर एकदम अड़ गया, तो उसने बेकार में खतरा मोल लेना उचित नहीं समझा। कपकोट पहुँच कर उसने गाडी रोक दी। और आगे के बारे में ज़रूरी दरियाफ्त करके ऐलान किया---दोस्तों, आगे रास्ते पर चट्टानें आ गिरी हैं। इसलिए कल सुबह तक ही हम आगे बढ़ पाएंगे। वह भी अगर आज रात को आसमान खुल गया तो।

हम लोग ख़राब मौसम और पहाड़ी रास्तों को कोसते हुए, भींगते-भागते, अपने-अपने सामानों के साथ स्टैंड के पास वाली दुकान की ओर चल पड़े। दुकान क्या, वह करीब-करीब एक धर्मशाल सी थी। आगे बरामदे में कैंटीन। पीछे कुछ छोटे-बड़े कमरे। उसके बाद बड़ा सा एक आँगन। और फिर लकड़ी का एक बड़ा सा टाल। शायद वहां कैंटीन और धर्मशाला के साथ-साथ सूखी लकड़ियों का भी बिजनेस चलता था।

कमरे कम थे और मुसाफिर अधिक। असमंजस में पड़ा मैनेजर बंटवारे के लिए कोई कारगर तरीका तलाश कर उस पर अमल करे इसके पहले ही वह उसके करीब पहुँच गयी---हम लोगों को एक अलग कमरा चाहिए। आप पैसों की चिंता बिलकुल मत कीजियेगा।

मेरे साथ बाकी लोगों ने भी चौंक कर देखा कि उसने हम दोनों में बाकायदा मुझे शामिल कर लिया था। मैनेजर ने पहले उसको देखा, फिर मुझे और फिस्स से हंस पड़ा---अरे मेम साब, हम क्या बुद्धू है कि साब और मेमसाब को एक नहीं दो अलग-अलग कमरा देगा? आप चले जाइये उस्स कमरे में...और उसने दाहिने तरफ के कोने वाले कमरे की तरफ इशारा कर दिया।

वह अपना सामान उठा कर जब कमरे की तरफ जाने लगी, तो मैनेजर ने बड़े संकोच के साथ मुझे अपने पास बुलाया---अगर आप बुरा न मानें तो कुछ और लोगों को आपके साथ...? पर इससे पहले कि मैं कुछ कहूं, वह तेज़ी से पलट पडी.---नहीं, बिलकुल नहीं...

कमरे में आकर मैंने अपनी सारी झिझक उसके सामने रख दी---आप...आप इसमें इत्मीनान से रहिये। मैं किसी और कमरे में चला जाता हूँ। पर ज़वाब देने के बजाय उसने मुझे घूर कर देखा---क्यों डर लग रहा है मुझसे? और मुस्करा कर मेरा गीला होल्डाल खोल कर फ़ैलाने लगी। और अचरज के फंदों में फंसा हुआ मैं कभी उसे और कभी बाहर बेतहाशा गिरते पानी को देखने लगा।

****

गीले कपड़े बदल कर मैं बरामदे में चाय की दुकान पर आ गया। और सिगरेट सुलगा कर उसके बारे में सोचने लगा...इतने थोड़े समय की जान-पहचान और इतनी आत्मीयता.? मेरे ऊपर इतना भरोसा?...कहीं इसके पीछे कोई चाल तो नहीं?...कहीं यह कोई चालू चालाक औरत तो नहीं?...कौन जाने? क्या पता, मुझे अपने जाल में फंसा कर बाद में पैसे ऐंठने लगे?...आजकल किसी का क्या ठिकाना?...पर चेहरे से तो सीधी-सादी और शरीफ लगती है। आँखें बड़ी निश्छल और निष्कपट हैं...माथे की गोल कत्थई बिंदी भी कहीं से क्रिमिनल नहीं लगती...पर पता नहीं, मासूमियत कहीं सिर्फ दिखावा ना हो...

उसके खुले और बेतकल्लुफ हरकतों ने एक तरफ तो मेरे दिमाग को झकझोर कर रख दिया था, पर दूसरी तरफ मुझे उसका साथ अच्छा और भला भी लग रहा था। जी कर रहा था कि उससे बातें करूँ। ढेर सारी बातें. लेकिन मैंने अपने आप को गंभीर बनाये रखने में ही भलाई समझी...सावधानी हटी नहीं कि दुर्घटना घटी।

अब यह तो याद नहीं कि वह किस स्टॉप पर चढी थी। पर जब वह चढ़ी, तो पूरे बस में एक हलचल सी भर गयी। मुसाफिरों में एक अजीब तरह की फुसफुसाहट शुरू हो गयी। मैंने भी उसे कई-कई बार मुड़ कर देखा। निगाहें मिलाईं। और शरीफ निगाहों से उसे देख कर मुस्कराया भी। वह कुछ देर तक तो अपना छाता, झोला और ब्रीफकेस लिए खडी रही। पर जैसे ही मेरी बगल वाली सीट खाली हुयी, वह करीब आकर बैठ गयी। निःसंकोच। खुशबू का एक दिलकश झोंका मेरे नथुनों में घुसा। और मैं शराफत से खिड़की की तरफ सरक गया।

मेरे हांथों में "एक चादर मैली सी" जब उसने यूं ही बंद देखी, तो माँग ली। सबसे पहले उसने कवर को देखा। फिर पीछे छपे नोट को। फिर भीतर लिखा मेरा नाम पढ़ा। और पन्ने पलटने लगी। बीच-बीच में उसने मुझे एकाध बार देखा भी। मुझे पढने की कोशिश भी की। पर मैं गंभीर बना भागती बस के बाहर पीछे छूट रहे दृश्यों को देखता रहा। पहाड़, घाटियाँ और घने हरे-भरे जंगल। आसमान, क्यारियां नुमा खेत, चोटियों से टकराते-उलझते बादल और सिर पर लकड़ी का गट्ठर लादे घर लौटती औरतें और लड़कियां।

सभी मुसाफिर अपने-अपने कमरों में दुबकने की तैयारी कर रहे थे। वह मेरे सूटकेस पर बैठी "एक चादर मैली सी" पढ़ रही थी। मुझे देखते ही मुस्कराई। किताब बंद करके रख दिया। और खड़ी हो गयी। मैंने सूटकेस से दो चादरें निकालीं। पहले अखबार बिछाया फिर उसके ऊपर से चादरें बिछा कर बिस्तर तैयार किया। उसे बैठने के लिए कहा। और खुद भी आराम से बैठ गया। बैग से कम्बल निकाल कर पावों पर डाला। सिगरेट सुलगाई। और उससे पूछा---आप कहाँ जा रहीं हैं?

---हल्द्वानी।

---उसके बाद?

---बरेली। और आप?

---मुरादाबाद।

---चलिए दूर तक साथ रहेगा।

---आप करती क्या हैं?

---पढ़ाती हूँ।

---कहाँ?